भाजपा को हराने के लिए एकजुट हो रहे विपक्षी दलों की वैकल्पिक नीतियाँ क्या हैं?

उत्तर प्रदेश के फूलपुर और गोरखपुर लोकसभा उप चुनावों से एकजुट हो रहीं विपक्षी पार्टियों के सामने भाजपा की हार का जो सिलसिला शुरू हुआ वह हाल में कैराना और नूरपुर समेत अन्य जगहों पर हुए उप चुनावों में भी जारी रहा। उप चुनावों में भाजपा की लगातार जारी हार से अब मोदी-शाह के अपराजित होने का मिथक टूटता जा रहा है। पिछले चार साल में देश के बुनियादी लोकतांत्रिक मूल्यों,संस्थाओं, समाज, संस्कृति और सभ्यता के लिए अभूतपूर्व संकट पैदा करने वाले मोदी राज से निजात पाने में यदि विपक्षी दलों की एकजुटता सफल होती है तो यह निश्चित तौर पर देश और लोकतंत्र के लिए अच्छा होगा। लेकिन क्या इससे जनता के अच्छे दिन आ जाएंगे ?

इन दलों और बन रहे गठबंधन के पास बदहाल होते जा रहे किसानों और कृषि संकट का क्या समाधान है, बेरोजगारी की मार झेल रहे नौजवानों को रोजगार देने की क्या नीति है, शोषित वर्गों और दलित, पिछड़े, आदिवासी, महिलाओं समेत वंचित तबकों की बेहतरी और न्याय के लिए उनकी क्या नीतियां हैं ? इस कसौटी पर तस्वीर बेहद निराशाजनक है।

कांग्रेस के नेतृत्व में यूपीए गठबंधन की मनमोहन सरकार के दस साल के शासन में जो जनविरोधी नीतियां देश पर थोपी गईं। उनसे जनता के विभिन्न वर्गों के विक्षोभ से फायदा उठाकर सत्ता में आई मोदी सरकार अपने पूर्ववर्तियों की उन्हीं आर्थिक- औद्योगिक नीतियों को तेजी से आगे बढ़ाने का काम ही कर रही है। जनता के जीवन का संकट और अधिक गहराता गया और कारपोरेट मीडिया द्वारा गढ़ी गई मोदी की छवि से पैदा हुई छद्म उम्मीदें धरातल पर दम तोड़ने लगीं। जनता के विभिन्न वर्गों के जीवन के मूलभूत प्रश्नों को पीछे धकेलने के मोदी-संघ द्वारा किये जा रहे विभाजनकारी प्रयास अब लोकप्रिय जनमत तैयार कर पाने में तात्कालिक तौर पर ही सही सफल नहीं हो पा रहे हैं।

जाहिर है संकट ढांचागत है और नव उदारीकृत नई आर्थिक-औद्योगिक नीतियों ने इसे और गहरा किया है। कांग्रेस ने इन जनविरोधी नीतियों से पीछे हटने का कोई संकेत नहीं दिया है और मानवीय चेहरे के साथ उदारीकरण का मनमोहन मॉडल कितना मानवीय था, सब देख चुके हैं।

यूपीए गठबंधन की अन्य क्षेत्रीय पार्टियां भी इन्हीं नीतियों की पिछलग्गू हैं। अजीत सिंह तो खुद कैबिनेट के अंग रहे, उत्तर प्रदेश की सपा और बसपा यूपीए -2 को बाहर से समर्थन करती रहीं और सूबे में इनकी सरकारें नई आर्थिक- औद्योगिक नीतियों की पैरोकारी में पीछे नहीं रहीं। अब 2019 में सत्ता के बदलाव में यदि ये सफल होते हैं तो यूपीए- 1 जैसी स्थिति भी नहीं होगी जहां वामदलों के दबाब में नई आर्थिक नीतियों की रफ्तार धीमी हुई, कुछ जनपक्षधर काम करने पड़े और जनता को कुछ राहत मिली। यह यूपीए-2 की नीतियों का ही विस्तार होगी। जनविरोधी नीतियों पर कोई लगाम नहीं होगी और जनता के लिए कोई विशेष राहत की उम्मीद नहीं की जा सकती।

राष्ट्रीय स्तर पर आमतौर पर यूपीए-1 के समय जैसी ही गठबंधन की स्थिति है। सीपीएम ने कांग्रेस के साथ किसी भी राजनीतिक गठबंधन को नकार दिया है। जिस "भाजपा हराओ महागठबंधन" की बात की जा रही है यह उत्तर प्रदेश केंद्रित परिघटना दिखती है जहां सपा और बसपा जो यूपीए सरकार को बाहर से समर्थन तो पहले भी देती रहीं थीं लेकिन सूबे की राजनीति में धुर विरोधी रहते हुए भी इस बार लोकसभा चुनावों में एक गठबंधन की दिशा में बढ़ रही हैं। इन दलों का यह गठबंधन भाजपा को हराने की कोई राजनीतिक-वैचारिक प्रतिबद्धता से अधिक अपने-अपने राजनीतिक बजूद को बचाने की कवायद ज्यादा दिखता है।

उप चुनावों में भाजपा की हार से यह स्पष्ट हो गया है कि उत्तरप्रदेश में सपा और बसपा के गठबंधन से बन रहा बड़ा संगठित सामाजिक आधार चुनावी शक्ति संतुलन में भाजपा पर भारी पड़ रहा है और भाजपा तात्कालिक तौर पर उसकी काट नहीं कर पा रही है। लेकिन सपा-बसपा गठबंधन की जनमुद्दों पर चुप्पी और इसके द्वारा कोई घोषित जनपक्षधर कार्यक्रम के साथ सामने न आना इसकी सबसे बड़ी कमजोरी है।

मोदी को सत्ता से हटा देने भर से जनता के अच्छे दिन नहीं आ जाएंगे। जन आंदोलन की ताकतों और जनपक्षधर लोकतांत्रिक शक्तियों को भाजपा हराने के राजनीतिक कार्यभार को सामने रखते हुए कांग्रेस सहित सपा और बसपा आदि भाजपा विरोधी गठबंधन के सामने जनता के सवालों को उठाना चाहिए और जनविरोधी नई आर्थिक-औद्योगिक नीतियों से पीछे हटने की मांग मजबूती से रखनी होगी।

(लेखक अजीत सिंह यादव, मजदूर किसान मंच, उत्तरप्रदेश के संयोजक हैं।)

साम्प्रदायिकता की चुनौती का जवाब क्या है?

मनोज कुमार झा

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की घोषित विचारधारा हिंदू राष्ट्रवाद है। भूलना नहीं होगा कि राष्ट्रवाद का अभ्युदय ऐतिहासिक दृष्टि से पूरी तरह एक यूरोपीय परिघटना है और राष्ट्रीयताओं का अभ्युदय धार्मिक आग्रहों, पूर्वग्रहों और चर्च की सत्ता से टकरा कर ही हुआ था। भारतीय राष्ट्रवाद की खासियत रही है कि इसका विकास औपनिवेशिक शक्तियों से संघर्ष के दौरान हुआ और 1857 के गदर के बाद जब अंग्रेजों को लगा कि सिर्फ हिंसक दमन कारगर नहीं होगा तो उन्होंने 'फूट डालो और राज करो' की वह कुख्यात नीति अख्तियार कर ली जिसका अंजाम धार्मिक आधार पर 'द्विराष्ट्रवाद' के सिद्धांत और फिर आजादी के साथ ही मानव सभ्यता की सबसे बड़ी त्रासदियों में से

एक देश विभाजन के रूप में सामने आया। अब सवाल यह है केंद्र में नरेंद्र मोदी की सरकार आने के साथ ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उसके अनेक छोटे-बड़े संगठन खुलकर हिंदुत्व की बात कर रहे हैं और इसे राष्ट्र का पर्याय बता रहे हैं, तो क्या 'खंड-खंड राष्ट्रवाद' के सिद्धांत को अमली जामा पहनाया जाएगा? अगर राष्ट्रवाद को इस तरह धर्म से जोड़ा गया तो देश को एक नहीं, अनेकानेक विभाजन के लिए तैयार रहना होगा।

बहरहाल, नरेंद्र मोदी और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का उभार अचानक हुई परिघटना नहीं है, बल्कि एक ऐतिहासिक प्रक्रिया की परिणति है, जिसका विकल्प फिलहाल नजर नहीं आता। ये दरअसल दिखा देता है कि भारतीय गणतंत्र का धर्मनिरपेक्षतावाद किस कदर खोखला था। प्रायः सभी विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि भारतीय

धर्मनिरपेक्षतावाद 'सर्वधर्म समभाव' पर आधारित था, जबकि सेक्युलरिज्म का मतलब है कि राज्य का धार्मिक मामलों से कोई लेना-देना नहीं होगा और यह व्यक्तिगत आस्था एवं विश्वास की चीज होगा, लेकिन ऐसा हुआ नहीं। हो सकता भी नहीं था, क्योंकि साम्प्रदायिक आधार पर राष्ट्र के विभाजन को स्वीकार कर लिया गया था।

कांग्रेस ब्रिटिश सत्ता से संघर्ष और समझौते के मार्ग पर शुरू से ही चल रही थी। अगर धार्मिक आधार पर राष्ट्र का विभाजन हो गया और कांग्रेस समेत तमाम दलों ने इसे स्वीकार कर लिया तो महज संविधान में दर्ज कर लिए जाने की वजह से ही भारतीय गणतंत्र सच्चे अर्थों में धर्मनिरपेक्ष नहीं हो सकता था।

'हिंदू-मुस्लिम सिख-ईसाई

आपस में हैं भाई-भाई', 'मजहब नहीं सिखाता आपस में वैर रखना', 'ईश्वर-अल्ला तेरो नाम सबको सन्मति दे भगवान', धर्मनिरपेक्षता का मतलब सिर्फ यही बना रहा। चुनावी प्रक्रिया में वोटों को धर्म, जाति और सामुदायिक पहचान के आधार पर बांटा जाता रहा। धार्मिक संस्थाओं और प्रतिनिधियों को राजकीय संरक्षण प्राप्त होता रहा, उन्हें मान्यता दी जाती रही। फिर कूपमंडूकता और साम्प्रदायिक आधार पर घृणा का प्रचार करने वाले उग्र हिंदूवादियों को कैसे रोका जा सकता था, जिनकी जड़ें देश के राजनीतिक इतिहास में बहुत गहरी थीं।

वास्तव में धर्मनिरपेक्षतावाद काफी हद तक अल्पसंख्यकवाद होकर रह गया। यहां प्रो. हरबंस मुखिया की इस बात को नहीं भूला जा सकता कि बहुसंख्यक साम्प्रदायिकता और अल्पसंख्यक साम्प्रदायिकता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और दोनों समान रूप से खतरनाक हैं। लेकिन इस बात को समझने की जरूरत किसे थी? कांग्रेस के साथ ही अन्य दलों ने भी वोटों की राजनीति में अल्पसंख्यकवाद का सहारा लिया। ऐसे में, हिंदूवादी ताकतें हावी हो गईं हैं तो हैरत की बात क्या है।

खास बात यह है कि फिलहाल 'हिंदू राष्ट्र' की सर्वसत्तावादी राजनीति को कोई चुनौती दरपेश नहीं है, क्योंकि अन्य तमाम दल भी किसी न किसी रूप में जाति और धर्म की ही राजनीति कर रहे हैं। सिर्फ भाजपा को साम्प्रदायिक और अन्य दलों को धर्मनिरपेक्ष मानना गलत होगा। दरअसल, भारतीय गणतंत्र के मूल में ही धर्मनिरपेक्षता नहीं थी। यह अलग बात है कि भारत 'धार्मिक राज्य' नहीं रहा, पर राष्ट्रवाद के साथ धर्म का घालमेल शुरू से ही बना रहा। साम्प्रदायिकता कभी भी खुलकर सामने नहीं आती। प्रेमचंद के शब्दों में यह गीदड़ की तरह शेर की खाल ओढ़ कर आती है। फिर साम्प्रदायिकता का हमला इतने छुपे रूपों में होता है कि निशाना कौन किसे बना रहा है, यह साफ दिखता नहीं और इस क्रम में अल्पसंख्यक समुदायों को भारी वंचना का शिकार होना पड़ता है।

परीक्षा और आत्महत्या

नही सुना कि अमेरिका में बोर्ड इग्जाम के रिजल्ट आ रहे हैं या यूके में लड़कियों ने बाजी मार ली या आस्ट्रेलिया में किसी स्टूडेंट के 99% आए हैं...

चंद्रशील गुप्ता

मई जून के महीने में हिन्दुस्तान में मानसून के साथ साथ हर घर में दस्तक देते हैं एक भय-एक उत्तेजना-एक जिज्ञासा-एक मानसिक विकृति... हर माता-पिता, हर बोर्ड के इग्जाम मे बैठे बच्चे हर बीतते हुए पल को एक ओबसेसन एक डिप्रेशन एक इनसेक्योरीटी में काट रहे होते हैं... कि क्या होगा ?

मानसिक अवसाद का ये मेरिट लिस्ट वाला,ये नया मानसून देश के हर हिस्से में तनाव और अवसाद की बारिश करने में काफ़ी असरदार हो चुका है...

माता -पिता फ़सल की तरह बच्चो को पाल रहे हैं कि कब फ़सल पके कब उनकी अधूरी रह चुकी आकांक्षाएं पूरी होंगी , कब वे फ़सल काटेंगे...

वे या उनके सपने बच्चो की लाइफ को गाइड नहीं कर रहे...

हमारे पूंजीवादी इनवेस्टर्स को क्या प्रोडक्ट चाहिये इस हिसाब से शिक्षा और उसके उद्देश्य तय हो रहे हैं... एक परिवार सुख चैन त्याग, दिन रात खल के ,सँघर्षो, घोर परिश्रम में गुज़र जाता है उस परिवार का अपना अस्तित्व और सुख चैन और मानवीय भावनाएं इसलिये भेंट चढ जाती हैं क्योंकि टीसीएस को एक बेहतरीन सॉफ्टवेयर डेवलेपर चाहिये... या मेकेन्से को बेस्ट ब्रेन चाहिये... या रिलायन्स को बेहतरीन गेम डिजाइनर चाहिये...

हमारी शिक्षा व्यवस्था व उसके आदर्श कहाँ रह गये ?

हमारे स्कूल देश के बेस्ट नागरिक नहीं देश के बेस्ट मजदूर बनाने में दिन रात एक करके जुटे हुए हैं!!

और... माता -पिता बच्चों को बच्चा नहीं, एक मेकेनिकल डीवाईस बनाने को प्रतिज्ञाबद्ध हैं...

बच्चों को जीने दो... दुनिया खत्म नहीं होने जा रही... उन्हें बेस्ट इम्प्लोई नहीं बेस्ट सीटीजन बनाने में यकीन रखो दोस्तो ...

बचपन की भी खुद से कुछ अपेक्षाएं होती हैं, अपने निस्वार्थ स्वप्न होते हैं, उनका हमारे लिये कोई अर्थ नहीं पर... बच्चों के लिये वो जन्नत से कम नही... प्लीज बच्चों की दुनिया मत उजाड़ो ... उन्हे मनोरोगी मत बनाओ ...

ये एक मानसिक रुग्णता ही तो है ..टोपर्स की खबरें.. उन्हें मिठाई खिलाते माता -पिता की मार्केटिंग... क्या ये आम सामान्य स्तर के बच्चों को मानसिक हीनता की अनुभूति नहीं देंगे ?

अरे..टॉपर तो दो चार होंगे बाकी देश का बोझ तो 99% इन्हीं फूल से कोमल सामान्य बच्चों ने ही उठाना है... उनकी मुस्कान मत छीनो... देश से उसकी सृजनात्मक शक्ति मत छीनो ...

वे कुछ भी बन जाएं ... एमएनसी में सीईओ हो जाएं पर जो बचपन की रिक्तता हमने आरोपित कर दी है वो उन्हे जीवन भर खलेगी और मानवीय विकृतियों के रुप में फलेगी ... हमको बेस्ट सीईओ मिलेंगे जिनकी प्राथमिकता उनकी कंपनी होगी , देश नही... ?

आओ बच्चों की नैसर्गिक प्रतिभा के मुताबिक उन्हें विकसित कर एक सुंदर भारत की सृजना करें।

विरोधाभास की पराकाष्ठा हैं नीतीश

आलोक कुमार

"हम करप्शन , क्राइम और कम्यूनलिज़्म से समझौता नहीं करने वाले: नीतीश कुमार" .....

नीतीश जी ... बेहतर होता बोलने से पहले खुद की ही गाथा के पन्ने पलट लिया करें ....

करप्शन से आपने एक नहीं कई दफा समझौता किया ... बोलने से पहले ज्यादा पीछे के अध्यायों को नहीं पलटते हुए सृजन, शौचालय, छात्रवृत्ति, रिजल्ट , धान जैसे और भी अनेकों हालिया करप्शन के वाकयों पर ही कम से कम पर गौर कर लिया होता आपने तो शायद आपकी आत्मा ऐसी बात बोलने की इजाजत नहीं देती आपको, वैसे आप खुद भी कहते हैं कि अंतरात्मा की आवाज़ सुनने वालों में से हैं आप ....

रही बात क्राइम की तो आपके कार्यकाल में अपराध चरम पर रहा और आज भी बदस्तूर जारी है , एन सी आर बी के आंकड़े ही काफी हैं ये सत्यापित करने के लिए .... आपराधिक चरित्र वाले जनप्रतिनिधियों की संख्या अभी भी सबसे ज्यादा आपकी पार्टी व आपके सत्तासीन सहयोगी दल में ही है .... बाहुबलियों को कैसा संरक्षण प्राप्त हुआ आपकी सरपरस्ती में ये कहानी भी छुपी नहीं है किसी से ... किस - किस का नाम लिया जाए .... अपराध और अपराधी से आपको परहेज होता तो अपनी कुर्सी बचाने के लिए आप लगभग डेढ़ दशक पहले पटना के बेऊर जेल में बंद सत्यापित - सजायाफ्ता आपराधिक पृष्ठभूमि वाले विधायकों की शरण में नहीं जाते ? .... मोकामा के बाहुबली विधायक से आपकी नज़दीकियों के किस्से व तस्वीरें भी तमाम हैं .....

अब रही बात कम्यूनलिज़्म की तो ..... आप तो आज भी कम्यूनल ताकतों की ही गोद में बैठे हैं .... केंद्र सरकार का मंत्रीपद आपको प्राप्त हुआ कम्यूनल फोर्सेज के शरण - सानिध्य में .... बहुत थोड़े अंतराल को छोड़ बिहार के मुखिया के तौर पर आप जमे रहे / हैं कम्यूनल ताकतों के सहयोग से .... संघ मुक्त भारत की बात करते - करते महज कुर्सी के लिए आपने कम्यूनल संघियों के साथ मंच साझा तक करना शुरू कर दिया ..... गुजरात में हुए सत्ता संरक्षित नरसंहार के पश्चात किस की तारीफ के कसीदे आपने गढ़े थे ये आपको याद ही होगा क्यूंकी आप को अनेकों दफा सार्वजनिक मंचों से बोलते सुना गया है कि "मैं कुछ भूलता नहीं "....

नीतीश जी .... आज के युग में आत्म मुग्धता का शिकार तो कमोबेश हरेक आदमी ही है लेकिन आपकी कथनी व करनी पर सरसरी निगाह डालते ही बिना ज्यादा माथापच्ची के ये स्पष्ट हो जाता है कि आत्ममुग्धता के शिखर - पुरुष आप ही हैं अपने दिल्ली वाले आका से भी दो कदम आगे ..... बिना लाग - लपेटे के कहा जाए तो "विरोधाभास की पराकाष्ठा हैं आप" ....